12078CH02

द्वितीयः पाठः

रघुकौत्ससंवादः

प्रस्तुत पाठ्यांश महाकवि कालिदास द्वारा विरचित रघुवंश महाकाव्य के पञ्चम सर्ग से संकलित है। इसमें महाराज रघु एवं वरतन्तु ऋषि के शिष्य कौत्स नामक ब्रह्मचारी के मध्य साकेत नगरी में हुआ संवाद वर्णित है।

कौत्स वेद, पुराण, वेदाङ्ग, दर्शन आदि 14 विद्याओं का अध्ययन समाप्त करके गुरुदक्षिणा देने की इच्छा से अपने गुरु वरतन्तु से बार-बार गुरुदक्षिणा लेने की प्रार्थना करता है। गुरु द्वारा गुरुभक्ति को ही गुरुदक्षिणा रूप में मानने पर भी कौत्स की निरन्तर प्रार्थना से रुष्ट होकर वरतन्तु उसे गुरुदक्षिणा के रूप में 14 करोड़ स्वर्णमुद्राएँ देने की आज्ञा देते हैं।

कौत्स विश्वजित् नामक यज्ञ में सर्वस्व दान कर चुके महाराज रघु के पास गुरुदक्षिणा के लिए धन माँगने आता है। महाराज रघु धनपति कुबेर पर आक्रमण करने की योजना बनाते हैं। भयभीत कुबेर रघु के कोषागार में सुवर्ण-वृष्टि कर देते हैं। रघु कौत्स को धन प्रदान कर सन्तुष्ट होते हैं और कौत्स भी गुरु को देने के लिए गुरुदक्षिणा प्राप्त कर सन्तुष्ट हो जाते हैं।

प्रस्तुत पाठ्यांश से यह सन्देश मिलता है कि शासक को सर्वसाधारण जन के प्रति उदार एवं कल्याणकारी होना चाहिए तथा याचक को अपनी आवश्यकता से अधिक प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं
निःशेषविश्राणितकोषजातम् ।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी
कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ॥1॥
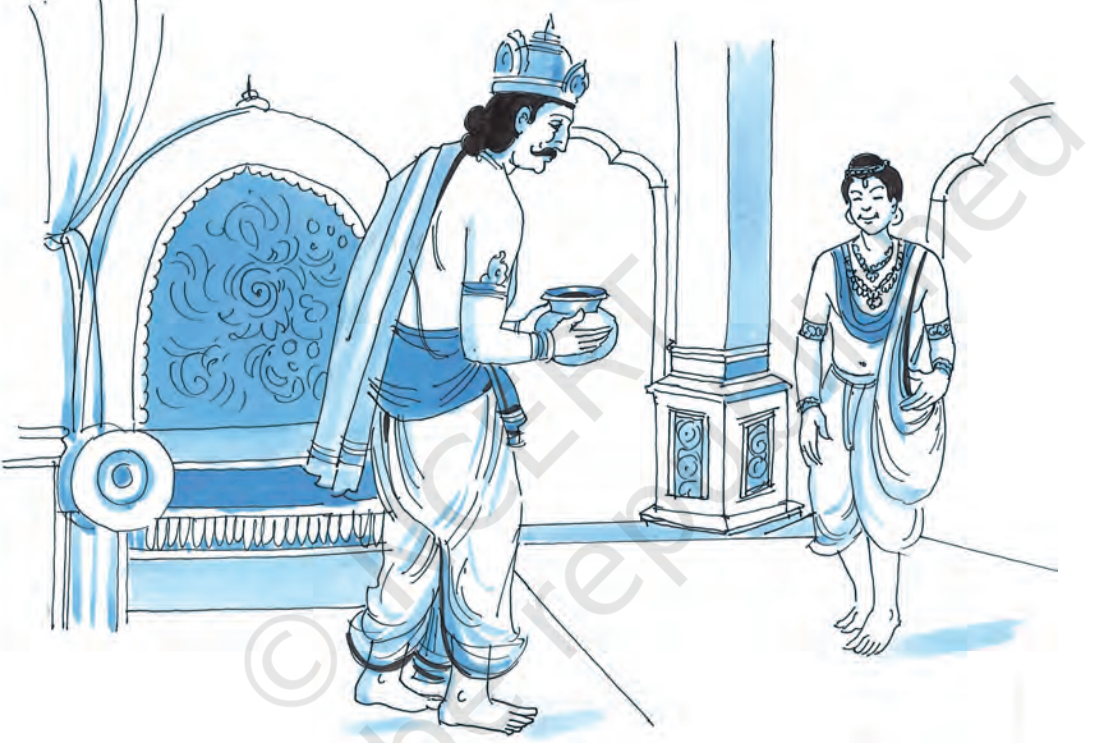
स मृण्मये वीतहिरण्मयत्वात्
पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः ।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः
प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः ॥2॥

तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञः
तपोधनं मानधनाग्रयायी ।
विशाम्पतिर्विष्टरभाजमारात्
कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच ॥3॥

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां
कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते।
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं
लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ॥4॥

तवार्हतो नाभिगमेन तृप्तं
मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे।
अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा
प्राप्तोऽसि सम्भावयितुं वनान्माम् ॥5॥

इत्यर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य
रघोरुदारामपि गां निशम्य।
स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाश-
स्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः ॥6॥

सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्!
नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः
कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥7॥

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्
आभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः
स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ॥8॥

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो
गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि ॥9॥

एतावदुक्त्वा प्रतियातुकामं
शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य ।
किं वस्तु विद्वन्! गुरवे प्रदेयं
त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त ॥10॥

ततो यथावद्विहिताध्वराय
तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी
विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ॥11॥

समाप्तविद्येन मया महर्षि-
र्विज्ञापितोऽभूद गुरुदक्षिणायै ।
स मे चिरायास्खलितोपचारां
तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात् ॥12॥

निर्बन्धसञ्जातरुषार्थकार्श्य-
मचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्तः ।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे
कोटीश्चतस्त्रो दश चाहरेति ॥13॥

इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्ति-
रावेदितो वेदविदां वरेण ।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं
जगाद भूयो जगदेकनाथः ॥14॥

गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा
रघोः सकाशादनवाप्य कामम् ।
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे
मा भूत्परीवादनवावतारः ॥15॥

स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये
वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे ।
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्-
यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम् ॥16॥

तथेति तस्यावितथं प्रतीतः
प्रत्यग्रहीत्सङ्गरमग्रजन्मा ।
गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य
निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात् ॥17॥

प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै
सविस्मयाः कोषगृहे नियुक्ताः ।
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये
वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः ॥18॥

तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं
लब्धं कुबेरादभियास्यमानात् ।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव
पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम् ॥19॥

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ
द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी
नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥20॥

शब्दार्थाः टिप्पणयश्च

विश्वजिति अध्वरे	–	विश्वजित् नामक यज्ञ में।
कोषजातम्	–	धन समूह। सम्पूर्ण धनराशि।
विश्राणितम्	–	प्रदत्तम्; दान में दिया हुआ। वि + श्रणु (दाने) + क्त; दत्तम्।
उपात्तविद्यः	–	विद्या को प्राप्त किया हुआ। विद्यासम्पन्न।
गुरुदक्षिणार्थी	–	गुरुदक्षिणा देने की इच्छा से प्रार्थना करने वाला।
प्रपेदे	–	पहुँचा। प्र + पद् (गतौ) लिट् + प्र.पु. एकवचन
मृण्मये	–	मिट्टी के बने हुए। मृत् + मयट्।
वीतहिरण्मयत्वात्	–	सोने के बने हुए पात्रों के न रहने से। हिरण्यस्य विकारः = हिरण्मयम्। वि + इण् + क्त।
निधाय	–	रखकर। संस्थाप्य। नि + धा + ल्यप्।
अर्घ्यम्	–	अर्घ निमित्तक द्रव्य। अर्घार्थम् योग्यम् इदं द्रव्यम् अर्घ + यत्।
अनर्घशीलः	–	असाधारण आचारवान्। महनीय स्वभाववाला। अमूल्यस्वभावः, असाधारण–स्वभावो वा। नञ् + अर्घः। अमूल्यम्।
श्रुतप्रकाशं	–	वेदादि शास्त्रों के अध्ययन से प्रसिद्ध। श्रुत = शास्त्र। श्रुतेन प्रकाशः। तम्।
श्रुतम्	–	वेदादि शास्त्र। श्रूयते इति श्रुतं–वेदादिशास्त्रम्। श्रु + क्त।
प्रत्युज्जगाम	–	पास उठकर गया। प्रति + उत् + गम् + लिट्। प्रथमपुरुष एकवचन।
आतिथेयः	–	अतिथि सत्कार करने वाला। अतिथये साधुः। अतिथि + ढञ्।
अर्चयित्वा	–	पूजन करके। अर्च् (पूजायां) + णिच् + क्त्वा। स्वार्थे णिच्।
विधिवत्	–	शास्त्रोक्त नियमों के अनुरूप। यथाशास्त्रम्। विधि + वत्।
विधिज्ञः	–	शास्त्रज्ञ। शास्त्र नियमों के वेत्ता।
तपोधनं	–	ऋषि को। जिसका तप ही धन है। तपः धनं यस्य। बहुब्रीहि समास।
मानधनाग्रयायी	–	आत्म गौरव को ही धन मानने वालों में अग्रगण्य / अग्रेसर।
विशाम्पतिः	–	राजा। विश् = प्रजा। पति = स्वामी।
विष्टरभाजाम्	–	आसन पर / पीठ पर बैठे हुए। विष्टरम् = आसनम् अथवा पीठम्।

आरात्	–	समीप में। दूर और समीप दोनों अर्थों में 'आरात्' पद का प्रयोग होता है। अव्यय।
कृत्यवित्	–	अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व को समझने वाला। कृ + यत् + विद् + क्विप्।
उवाच	–	वच (परिभाषणे) धातु, लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।
मन्त्रकृताम्	–	मन्त्रद्रष्टाओं में। मनन करने वालों में। चिन्तन करने वालों में। प्रथम अर्थ में कृ-धातु का अर्थ है 'दर्शन' न कि निर्माण। ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।
कुशाग्रबुद्धे	–	हे सूक्ष्मदर्शी ! कुशस्य अग्र कुशाग्रं कुशाग्रमिव बुद्धिर्यस्य सः कुशाग्रीयम्। तत्सम्बोधनम्। कुश एक विशेष प्रकार की तीखी नोंक वाली घास होती है, जिसका उपयोग यज्ञ-यागादि में किया जाता है।
अशेषम्	–	सम्पूर्ण। अविद्यमानः शेषः यस्मिन् तत्। न + शेषम्। शेष न रहने तक।
लोकेन	–	लोगों से। समूहवाची पद।
उष्णरश्मिः	–	सूर्य। उष्णः रश्मिः यस्य सः। बहुव्रीहि समास।
आप्तम्	–	प्राप्त किया गया। आप्लृ (व्याप्तौ) + क्त।
अर्हतः	–	प्रशंसा के योग्य का। अर्ह् (पूजायाम्) + शतृ, षष्ठी एकवचन। अर्ह-धातु से 'प्रशंसा' के अर्थ में ही शतृ प्रत्यय होता है।
अभिगमेन	–	आगमन से।
तृप्तम्	–	सन्तुष्ट। तृप् (प्रीणने) + क्त।
नियोगक्रियया	–	आज्ञा से।
उत्सुकं	–	उत्कण्ठित।
सम्भावयितुम्	–	कृतार्थ करने के लिए। सम् + भू + णिच् + तुमुन्।
अर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य	–	(मृण्मय) अर्घ्यपात्र से ही जिसके सम्पूर्ण धन के व्यय हो जाने का पता लगता है उसका। अर्घ्यस्य पात्रम्। अर्घ्यपात्रेण अनुमितः व्ययः यस्य सः। तस्य = रघोः।

गाम्	–	वाणी को। गो शब्द अनेकार्थक है। इस स्थान पर वाणी का वाचक है।
निशम्य	–	सुनकर। नि + शम् + ल्यप्।
स्वार्थोपपत्तिम्	–	अपने प्रयोजन (कार्य) की सिद्धि को। यहाँ अर्थ शब्द प्रयोजन वाचक है।
दुर्बलाशः	–	निराश होते हुए; शिथिल मनोरथ होते हुए। दुर्बला आशा यस्य सः।
अवोचत्	–	बोला। वच् + (परिभाषणे) लङ् प्रथमपुरुष, एकवचन।
वार्तम्	–	कुशलता, नीरोगता। 'वार्तं, स्वास्थ्यम्, आरोग्यम्, अनामयम्' इति पर्यायपदानि।
अवेहि	–	जानो। अव + इहि (इण् गतौ) लोट् मध्यमपुरुष एकवचन।
सूर्ये तपति (सति)	–	सूर्य के प्रकाशमान होने पर। सती सप्तमी प्रयोग। तपति – तप + शतृ सप्तमी विभक्ति एकवचन (पुं.)
कथं कल्पेत	–	कैसे पर्याप्त होगा (समर्थ नहीं होगा) क्लृप् (सामर्थ्ये) विधि लिङ्। प्रथम पुरुष एकवचन।
तमिस्रा	–	अन्धकार समूह। 'तमिस्रा तु तमस्ततौ'।
शरीरमात्रेण	–	केवल शरीर से। केवलं शरीरं शरीरमात्रम्। मात्रच् प्रत्यय।
आभासि	–	सुशोभित हो रहे हो। आ + भा (दीप्तौ) लट् मध्यम पुरुष एकवचन।
तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः	–	सत्पात्रों को सारी सम्पत्ति दान करने वाले। तीर्थे–सत्पात्रे प्रतिपादिता–दत्ता ऋद्धिः–समृद्धिः (सम्पत्) येन सः।
आरण्यकाः	–	अरण्य में निवास करने वाले मुनिजन आदि अरण्ये भवाः आरण्यकाः।
स्तम्बेन	–	डांठ (डंठल) मात्र से। तृतीया विभक्ति एकवचन।
नीवारः	–	धान्य विशेष। जंगल में स्वतः उत्पन्न हुआ धान्य विशेष।
अनन्यकार्यः	–	जिसे निर्दिष्ट उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य कार्य न हो। प्रयोजनान्तर–रहितः। न विद्यते अन्यकार्यं यस्य सः। अन्यच्च तत् कार्यञ्च अन्यकार्यम्।

आहर्तुम् – ग्रहण करने के लिये। आ + हृ (हरणे) + तुम्।

यतिष्ये – प्रयत्न करूँगा। यती (प्रयत्ने) + लृट् उत्तम पुरुष बहुवचन।

निर्गलिताम्बुगर्भं – जिसके गर्भ से जल निकल चुका हो। अम्ब्वेव गर्भः अम्बुगर्भः। निर्गलितः अम्बुगर्भः यस्मात् सः।

शरद्धनम् – शरत् कालिक मेघ।

नार्दति – याचना नहीं करता है। न + अर्दति। अर्द् (गतौ याचने च) लट् प्रथम पुरुष एकवचन।

चातकः – पपीहा (पक्षी विशेष) चातक पक्षी।

प्रतियातुकामम् – लौट जाने की इच्छा वाले को। प्रतियातुं कामः यस्य सः तम्। प्रति + या (प्रापणे) + तुम्। 'तुंकाममनसोरपि' इस अनुशासन से 'तुम्' प्रत्यय के मकार का लोप होता है।

निषिध्य – निवारण कर। निवार्य। नि + षिध् (गत्याम्) + ल्यप्।

प्रदेयम् – देने योग्य। प्र + दा (दाने) + यत्।

कियत् – कितना। किं परिमाणम्?।

अन्वयुङ्क्त – पूछा। अनु + युज् + लङ् प्रथम पुरुष एकवचन। अयुङ्क्त अयुञ्जाताम् अयुञ्जत।

यथावत् – विधिवत्। शास्त्रों के नियमानुरूप।

स्मयावेशविवर्जिताय – जो गर्व के आवेश से वर्जित हो। गर्वाभिनिवेशशून्याय। स्मयः = गर्वः।

वर्णी – ब्रह्मचारी। वर्ण + इन्।

आचचक्षे – कहने लगा था। आ + चक्षिङ् (व्यक्तायां वाचि) लिट् प्रथमपुरुष एकवचन।

गुरवे – नियामक को। प्रजानां नियामकाय।

गुरुदक्षिणायै – गुरुदक्षिणा स्वीकार करने हेतु।

चिराय – चिरकाल से (बहुत वर्षों से/बहुत दिनों से)। यह एक अव्यय है, जिसके अन्त में नाना विभक्तियों के रूप दिखाई पड़ते हैं। जैसे–चिरम्, चिरात्, चिरस्य। ये सभी समानार्थक हैं।

अगणयत्	–	गिन लिया। गण् (संख्याने) + णिच् + लङ्। चुरादि गण।
पुरस्तात्	–	सब से पहले। अव्यय।
निर्बन्धेन	–	बार बार प्रार्थना किये जाने से। प्रार्थनातिशयेन।
अर्थकार्श्यम्	–	अर्थ संकट, दारिद्र्य।
अचिन्तयित्वा	–	बिना सोचे। नञ् + चिती (संज्ञाने) + णिच् + त्वा।
विद्यापरिसङ्ख्यया	–	विद्या की गणना (संख्या) के अनुसार।
आहर	–	लाओ। आ + हृ + लोट्। मध्यम पुरुष एकवचन।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिः	–	जितेन्द्रिय। पापों से निवृत्त इन्द्रिय वृत्ति वाले। एनः = पाप, अपराध।
जगाद	–	कहा। गद् (व्यक्तायां वाचि) + लिट्। प्रथमपुरुष एकवचन।
श्रुतपारदृश्वा	–	शास्त्रज्ञ, शास्त्रमर्मज्ञ। श्रुतस्य पारं दृष्टवान्। श्रुत + पार + दृश् + क्वनिप्।
सकाशात्	–	पास से। अव्यय।
वदान्यान्तरम्	–	दूसरे दाता। वदान्यः = दानी। अन्यः वदान्यः वदान्यान्तरम्।
माभूत्	–	न होवे। माङ् + अभूत्।
परीवादः	–	निन्दा। 'परिवाद' शब्द भी निन्दार्थक है।
वसन्	–	रहते हुए। वस् (निवासे) + शतृ। प्रथमा विभक्ति, एकवचन।
चतुर्थः अग्निः इव	–	चौथी अग्नि जैसा। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि नाम से अग्नि के तीन प्रकार हैं।
अग्न्यगारे	–	अग्निशाला में। यज्ञशाला में।
त्वदर्थं साधयितुं यावद्यते	–	तुम्हारा प्रयोजन पूरा करने के लिए यत्न करूँगा। तव + अर्थम्, = त्वदर्थम् यावत् + यते। 'यतिष्ये' इस अर्थ में 'यते' का प्रयोग। यती (प्रयत्ने) + लट्, आत्मनेपदी। उत्तमपुरुष एकवचन।
अवितथम्	–	सत्य। वितथम् = मिथ्या, न वितथम् = अवितथम्।
सङ्गरम्	–	प्रतिज्ञा को। 'संङ्गर' नानार्थक शब्द है।
गाम्	–	भूमि को। अनेकार्थक शब्द।
चकमे	–	इच्छा की। कम् (कान्तौ), लिट्, आत्मनेपदी, प्रथम पुरुष एकवचन।

कोषगृहे	–	खजाने में। 'कोशगृह' पद भी प्रचार में है।
शशंसुः	–	कहा था। कथयामासुः। शंस् + लिट् प्रथम पुरुष बहुवचन।
नभस्तः	–	आकाश की ओर से। नभस् + तसिल्। अव्यय।
भासुरम्	–	चमकते हुए। चमकीला। भास्वरम्।
अभियास्यमानात्	–	आक्रमण किये जाने वाले (कुबेर से)। अभि + या (प्रापणे) + लृट् (कर्मणि) यक् + शानच्। अभिगमिष्यमाणात्।
दिदेश	–	दे दिया। दिश् (अतिसर्जने) लिट् प्रथम पुरुष एकवचन।
सुमेरोः	–	सुमेरु पर्वत का। पुराणों के अनुसार यह स्वर्णमय पर्वत है।
वज्रभिन्नम्	–	वज्रायुध से कटा हुआ। 'वज्र' इन्द्र का आयुध है। उसने वज्रायुध से पर्वतों के पंख काट दिये, ऐसी पौराणिक कथा है।
पादम्	–	गिरिपादः। तलहटी। प्रत्यन्तपर्वतमिव स्थितम्।
अभिनन्द्यसत्त्वौ	–	प्रशंसनीय व्यवहार वाले (दोनों)। अभिनन्द्यं सत्त्वं ययोः तौ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः	–	गुरु को देने से अधिक द्रव्य को लेने में इच्छा न रखने वाला (अर्थी)
अधिकप्रदः	–	अधिक देने वाला। अधिकं प्रददाति इति।
साकेतनिवासिनः	–	अयोध्या के निवासी लोग। साकेत + निवास + इन्। षष्ठी विभक्ति एकवचन।

अभ्यासः

1. **संस्कृतभाषया उत्तरं लिखत ।**

(क) कौत्सः कस्य शिष्य आसीत्?

(ख) रघुः कम् अध्वरम् अनुतिष्ठति स्म?

(ग) कौत्सः किमर्थं रघुं प्राप?

(घ) मन्त्रकृताम् अग्रणीः कः आसीत्?

(ङ) तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः नरेन्द्रः कथमिव आभाति स्म?

(च) चातकोऽपि कं न याचते?

(छ) कौत्सस्य गुरुः गुरुदक्षिणात्वेन कियद्धनं देयमिति आदिदेश?

(ज) रघुः कस्मात् परीवादात् भीतः आसीत्?

(झ) कस्मात् अर्थं निष्क्रष्टुं रघुः चकमे?

(ञ) हिरण्मयीं वृष्टिं के शशंसुः?

(ट) कौ अभिनन्द्यसत्त्वौ अभूताम्?

2. कोष्ठकात् समुचितं पदमादाय रिक्तस्थानानि पूरयत ।

(क) यशसा .... अतिथिं प्रत्युज्जगाम। (प्रकाशः, कृष्णः, आतिथेयः)

(ख) मानधनाग्रयायी .... तपोधनम् उवाच। (विशाम्पतिः, अकृताञ्जलिः, कौत्सः)

(ग) कुशाग्रबुद्धे! .... कुशली। (ते शिष्यः, ते गुरुः, अग्रणीः)

(घ) हे राजन् सर्वत्र .... अवेहि। (दुःखम्, वार्तम्, असुखम्)

(ङ) स्तम्बेन अवशिष्टः .... इव आभासि। (धान्यम्, नीवारः, वृक्षः)

(च) हे विद्वन्! .... गुरवे कियत् प्रदेयम्। (त्वया, मया, लोकेन)

(छ) .... अचिन्तयित्वा गुरुणा अहमुक्तः (शरीरक्लेशम्, अर्थकार्श्यम्, रोगक्लेशम्)

3. अधोलिखितानां सप्रसङ्गं हिन्दीभाषया व्याख्या कार्या ।

(क) कोटीश्चतस्रो दश चाहर।

(ख) माभूत्परीवादनवावतारः।

(ग) द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्।

(घ) निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात्।

(ङ) दिदेश कौत्साय समस्तमेव।

4. अधोलिखितेषु रिक्तस्थानेषु विशेष्य विशेषणपदानि पाठ्यांशात् चित्वा लिखत ।

(क) .... अध्वरे।

(ख) .... कोषजातम्।

(ग) .... अनुमितव्ययस्य।

(घ) .... फलप्रसूतिः।

(ङ) .... विवर्जिताय।

5. विग्रह पूर्वकं समासनाम निर्दिशत –

(क) उपात्तविद्यः (ख) तपोधनः

(ग) वरतन्तुशिष्यः (घ) महर्षिः

(ङ) विहिताध्वराय (च) जगदेकनाथः

(छ) नृपतिः (ज) अनवाप्य

6. अधोलिखितानां पदानां समुचितं योजनं कुरुत –

(अ)	(आ)
(क) ते	(1) चतुर्दश
(ख) चतस्रः दश च	(2) गुरुदक्षिणार्थी
(ग) अस्खलितोपचारां	(3) अहानि
(घ) चैतन्यम्	(4) स्वस्ति अस्तु
(ङ) कौत्सः	(5) प्रबोधः प्रकाशो वा
(च) द्वित्राणि	(6) भक्तिम्

7. प्रकृतिप्रत्ययविभागः क्रियताम् –

(क) अर्थी (ख) मृण्मयम् (ग) शासितुः (घ) अवशिष्टः (ङ) उक्त्वा (च) प्रस्तुतम् (छ) उक्तः (ज) अवाप्य (झ) लब्धम् (ञ) अवेक्ष्य।

8. विभक्ति-लिङ्ग-वचनादिनिर्देशपूर्वकं पदपरिचयं कुरुत –

(क) जनस्य (ख) द्वौ (ग) तौ (घ) सुमेरोः (ङ) प्रातः (च) सकाशात् (छ) मे (ज) भूयः (झ) वित्तस्य (ञ) गुरुणा

9. अधोलिखितानां क्रियापदानाम् अन्येषु पुरुषवचनेषु रूपाणि लिखत –

(क) अग्रहीत् (ख) दिदेश (ग) अभूत् (घ) जगाद (ङ) उत्सहते (च) अर्दति (छ) याचते (ज) अवोचत्

10. अधोलिखितानां पदानां विलोम पदानि लिखत –

(क) निःशेषम् (ख) असकृत् (ग) उदाराम् (घ) अशुभम् (ङ) समस्तम्

11. अधोलिखितानां पदानां वाक्येषु प्रयोगं कुरुत –

(क) नृपः (ख) अर्थी (ग) भासुरम् (घ) वृष्टिः (ङ) वित्तम् (च) वदान्यः (छ) द्विजराजः (ज) गर्वः (झ) घनः (ञ) वार्तम्

12. अधोलिखितानाम् अन्वयं कुरुत –

(क) स मृण्मये वीतहिरण्मयत्वात् .... आतिथेयः।

(ख) समाप्तविद्येन मया महर्षिः .... पुरस्तात्।

(ग) स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये .... त्वदर्थम्।

13. अधोलिखितेषु प्रयुक्तानाम् अलङ्काराणां निर्देशं कुरुत –

(क) 'यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन .... चैतन्यमिवोष्णरश्मेः'।।

(ख) शरीरमात्रेण नरेन्द्र! तिष्ठन्न भासि .... इवावशिष्टः।।

(ग) तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं .... वज्रभिन्नम्।।

14. अधोलिखितेषु छन्दः निर्दिश्यताम् –

(क) तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं .... वरतन्तुशिष्यः।।

(ख) गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा .... नवावतारः।।

(ग) स त्वं प्रशस्ते महिते .... त्वदर्थम्।।

15. 'रघु-कौत्ससंवाद' सरलसंस्कृतभाषया स्वकीयैः वाक्यैः विशदयत।

योग्यताविस्तारः

कालिदासीया काव्यशैली सहृदयानां मनो नितरां रञ्जयति। प्रतिमहाकाव्यं सुललितैः सुमधुरैः प्रसादगुणभरितैः च शब्दसन्दर्भैः मनोहारिणः संवादान् कविः समायोजयति। तत्र हृदयङ्गमाः परिसरसन्निवेशाः आश्रमोपवनादयः, लतागुल्मादयः, शुक-पिक-मयूर-मरन्द-हरिणादयः स्वभावरमणीयाः कविना चित्र्यन्ते।

तादृशाः संवादाः कालिदासीयमहाकाव्ययोः सन्त्यनेके। यथा–रघुवंशे एव द्वितीयसर्गे सिंह–दिलीपयोः संवादे–

'अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य।।''

रघुवंशम् 2.34

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ सङ्गतयोर्वनान्ते।
तद्भूतनाथानुग! नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम्।।

रघुवंशम् 2.58

कालिदासः उपमालङ्कारप्रियः। तस्य सर्वेषु काव्येषु उपमायाः हृदयहारीणि उदाहरणानि लभ्यन्ते। यथा–

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि।।

रघुवंशम् 1.88

अर्घ्यम् – **अर्घ्यम्** इति पदेन अतिथिसत्कारार्थं सङ्ग्राह्यं द्रव्यम् अभिधीयते। भारतीयायाम् अतिथिसत्कार परम्परायाम् एतेषां द्रव्याणां नितरां महत्त्वं वर्तते। तानि द्रव्याणि दूरादागतस्य अतिथिजनस्य अध्वश्रमम् अपनेतुं समर्थानि; अत एव तानि अर्घ्यद्रव्येषु स्थानं भजन्ते। अर्घस्य, अर्घ्यस्य वा द्रव्याणि तु – दूर्वा, अक्षतानि, सर्षपाः, पुष्पाणि सुगन्धीनि, चन्दनादिसुगन्धिद्रव्याणि, स्वादु शीतलं जलञ्च। अर्घः अर्घ्यं वा अतिथीनाम् उपचाराथम्। आदरार्थं वा विधीयत इति याज्ञवल्क्यः प्राह। तद्यथा–

'दूर्वा सर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घं पूर्णमञ्जलिम्' इति।

विद्या – प्राचीनकाले चतुर्दश विद्याः पाठ्यन्ते स्म। ताः स्मृतिषु उल्लिखिताः सन्ति। तद्यथा

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश।।

शिक्षा, व्याकरणं, छन्दः, निरुक्तं, ज्यौतिषं, कल्पः इति षट् वेदाङ्गानि; ऋक्, साम, यजुः, अथर्वण इति चत्वारो वेदाः। वेदार्थविचाराय प्रवृत्तं मीमांसाशास्त्रम्, न्यायविस्तरशब्देन ज्ञायमाना आन्वीक्षिकी, दण्डनीतिः, वार्ता, च; अष्टादश–पुराणानि; धर्मशास्त्रञ्च चतुर्दश–विद्यासु अन्तर्भवन्ति।

मन्त्रः – मन्त्र इति पदं 'मत्रि' (गुप्तभाषणे) धातोः घञ् प्रत्यये कृते निष्पन्नः, ऋषिभिः दृष्टानाम् आनुपूर्वाप्रधानानाम् ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यानां सामान्येन बोधकम्। प्रत्येकं वेदे अन्तर्गतानां मन्त्राणां बोधकतया भिन्नाः भिन्नाः शब्दाः प्रयुज्यन्ते। केवलम् ऋङ्मन्त्रणां कृते 'ऋच' इति साममन्त्राणां 'सामानि' इति, यजुर्मन्त्राणां 'यजूंषि' इति अथर्वमन्त्राणां 'आथर्वा' इति च संज्ञा।

ज्ञानार्थकात् 'मन्' धातोः अपि मन्त्रशब्दस्य व्युत्पत्तिं प्रदर्शयन्ति। ध्यानावस्थायां मन्त्रान् ऋषयः अपश्यन् इति कारणात् ते 'मन्त्रद्रष्टार' इत्युच्यन्ते। सर्वदा मननं कुर्वन्ति, ध्यानमग्ना भवन्ति इति कारणात् ऋषयः मन्त्रकृत इत्यपि उच्यन्ते।

बहुभाषाज्ञानम् – अधोलिखितानाम् अन्यभाषाशब्दानां समानार्थकानि पदानि पाठे अन्वेष्टव्यानि

मेजबान (Host) अगवानी (to receive) जिद (insistance)

विशिष्टवाक्यनिर्माणकौशलम्

'सूर्ये तपति कथं तमिस्रा'–एतत्सदृशानि वाक्यानि निर्मेयानि

1. सूर्ये अस्तम् .... (गम्) चन्द्र उदेति।
2. मयि मार्गे .... (स्था) यानम् आगतम्।
3. तस्मिन् .... (प्रच्छ्) अहम् उत्तरम् अयच्छम्।

अनेकार्थकशब्दः – पाठ्यांशे दृष्टानाम् अनेकार्थकशब्दानां सङ्ग्रहं कृत्वा नाना अर्थान् उल्लिखत।

काव्यसौन्दर्यबोधः – कालिदासस्य अन्येषु काव्येषु – ऋतुसंहार–मेघदूतयोः, मालविकाग्निमित्र–विक्रमौर्वशीयाभिज्ञानशाकुन्तलेषु कुमारसम्भवे च भवद्भिः अवलोकिताः अलङ्कारैः सुशोभिताः श्लोकाः सङ्ग्राह्याः, काव्यसौन्दर्यं च समुपस्थापनीयम्।

चित्रलेखनम् – कालिदासकृतं प्रकृतिचित्रणम्, आश्रमचित्रणं, वृक्षादीनां पशुपक्षिणां च चित्रणं श्लोकोल्लेखनपूर्वकं फलकेषु पत्रेषु वा वर्णैः लेपनीयम्।